ट्रंप और तेहरान के बीच फंसा यूरोप

स्टीवन एर्लंगर

© The New York Times 2019

यूरोपीय देशों को चुंकि इराक के खिलाफ भीषण युद्ध की याद है, इसलिए वे ईरान के खिलाफ अमेरिका के उकसावे वाले रुख का विरोध करते हुए एकजुट हैं। अलबत्ता ट्रंप प्रशासन के दौरान ट्रांस-अटलांटिक रिश्तों में पड़ी दरार के बावजूद यूरोपीय देशों के लिए अमेरिका का खुलेआम विरोध करना कठिन है।

शुरुआत में अमेरिका के पाले में खड़े ब्रिटेन ने भी ईरान पर अमेरिकी रुख का समर्थन करने से इनकार कर दिया, जब गठबंधन सैनिकों की ओर से आईएस (इस्लामिक स्टेट) के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे एक् ब्रिटिश जनरल ने कहा कि इराक और सीरिया में ईरान की ओर से खतरा नहीं बढ़ा है। लेकिन अमेरिका ने जब इस संभावना को कठोरता के साथ खारिज कर दिया, तब खुलेआम अमेरिका के खिलाफ खड़े होने से हिचकते यूरोपीय देशों को अपना सुर नरम करना पड़ा। ब्रिटेन आधिकारिक तौर पर यह कहते हुए झुक गया कि अब वह अमेरिकी रुख का समर्थन करता है। जबकि जर्मनी और नीदरलैंड्स ने ईरानी खतरे के बारे में अमेरिकी चेतावनी के मद्देनजर अपने सैन्याभ्यास स्थगित कर दिए। हालांकि बाद में जर्मनी ने सैन्याभ्यास फिर से शुरू करने की बात कही।

लेकिन ऊपरी दिखावे को अलग करें, तो साफ पता चलता है कि ईरान के मुद्दे पर यूरोपीय देश कहां खड़े हैं। 'यूरोप के प्रत्येक देश का यह मानना है कि ईरान की तरफ से आज अगर बढ़ता खतरा दिखाई दे रहा है, तो वह अमेरिकी सख्ती का नतीजा है, चाहे वह परमाणु समझौते से बाहर निकलने का फैसला रहा हो या दूसरे तमाम मुद्दों पर ईरान पर दबाव बनाने की अमेरिकी कोशिश', कोरी शेके कहते हैं, जो पेंटागन के पूर्व अधिकारी और अब इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्ट्रेटेजिक स्टडीज के उप-निदेशक हैं। 'इस मामले में अमेरिका का रुख न केवल उकसाने वाला है, बल्कि वह ईरान के प्रत्याशित रुख पर भी भीषण सख्ती दिखा रहा है, ताकि भविष्य में ईरान पर हमले का बहाना बना सके', वह कहते हैं।

इस मामले में 2003 के इराक पर अमेरिकी हमले के पहले के दौर से यह दौर भिन्न है। तब इराक के मामले में यूरोपीय देश बंटे हुए थे। नाटो में पूर्व स्लोवाक राजदूत टॉमस वैलासेक कहते हैं, 'इसे इस तरह समझ सकते हैं कि सभी यूरोपीय देश अमेरिका से कह रहे हैं कि यह पागलपन है, और हमें यहां नहीं होना चाहिए। यह आपकी गलती है, जिस

कारण आज हम युद्ध की भाषा बोल रहे हैं।'

ट्रांस-अटलांटिक रिश्तों के समर्थक टॉमस कहते हैं कि आज अमेरिका के खिलाफ पूरे यूरोप को एकजुट होने की जरूरत है।

यूरोपीय देश ट्रंप और तेहरान के बीच फंसे हुए हैं। वे एक ओर अमेरिका से बेहतर रिश्ता बनाए रखना चाहते हैं, दूसरी तरफ 2015 में ईरान के साथ हुए परमाणु समझौते का समर्थन करते हैं, जिससे ट्रंप एकतरफा ढंग से बाहर निकल गए। कुछ वरिष्ठ यूरोपीय अधिकारियों का मानना है कि ट्रंप ईरान के साथ युद्ध नहीं चाहते, जैसा कि उन्होंने पिछले दिनों भी जताया, लेकिन उनके राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जॉन आर वोल्टन युद्ध चाहते हैं। वे *द न्यूयार्क टाइम्स* में 2015 में छपे वोल्टन के एक लेख का हवाला देते हैं, जिसका शीर्षक था, *ईरान का बम रोकने के लिए उस पर बमबारी करें।* यूरोपीय अधिकारी ट्रंप की इस बात से भी हैरान हैं, जिसमें उन्होंने ईरान के साथ नए सिरे से बातचीत करने के बारे में कहा है। वे कहते हैं कि ईरान के सर्वोच्च नेता उस अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ बातचीत करने में भला क्यों उत्सुकता दिखाएंगे, जिन्हें वह धोखेबाज मानते हैं, और जो ईरान के साथ हुए परमाणु समझौते से एकतरफा ढंग से निकल चुके हैं।

ब्रिटिश विदेश मंत्री जेरेमी हंट और जर्मन विदेश मंत्री हेइको मास ने तनाव बढ़ाने और अचानक युद्ध छिड़ जाने के खतरों के प्रति आगाह किया है। मास ने जर्मन सांसदों को बताया है कि ईरान पर लगातार दबाव बढ़ाने से स्थिति के नियंत्रण से बाहर चले जाने का खतरा है।

1990-91 के पहले खाड़ी युद्ध में अमेरिका के नेतृत्व में अनेक देशों का गठबंधन तैयार हुआ था। 2003 के दूसरे युद्ध में ब्रिटेन और पोलैंड ही मुख्य रूप से अमेरिका का समर्थन कर रहे थे। यूरोपीय देश इस समय ईरान के मामले में अमेरिकी रुख से सहमत नहीं हैं, तो इसका एक कारण 2003 का युद्ध भी रहा है, जिसमें तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर और पोलैंड के राष्ट्रपति एलेक्जेंडर क्वासेंवस्की पर इराकी खतरे के बारे में फर्जी और बढ़ा-चढ़ाकर किए गए दावों के आरोप लगे थे। इससे इन दोनों देशों की छवि खराब हुई।

लेकिन ट्रंप प्रशासन को, जिसने व्यापार व जलवायु परिवर्तन तथा इस्राइल और रूस से रिश्तों के संदर्भ में यूरोप से अपने संबंध बुरी तरह खराब कर लिए हैं, इसकी रत्ती भर परवाह नहीं है कि ईरान के मामले में यूरोपीय देशों का रवैया क्या है। यूरोपीय अधिकारियों का मानना है कि ईरान पर अमेरिकी बहस अभी खत्म नहीं हुई है। यही नहीं, इस मामले में वे अपना सौ फीसदी योगदान देना चाहते हैं। जैसा कि एक अधिकारी ने बताया, 'पश्चिम एशिया में अमेरिका को एक और तकलीफदेह युद्ध शुरू करने देने में हमारा थोड़ा भी समर्थन नहीं है।'

नवजागरण के प्रथम पुरुष

गौतम चटर्जी

कुछ भारतीय नाम ऐसे हैं, जिनका स्मरण करते ही मन पवित्र हो जाता है। उनमें से एक हैं पंडित ईश्वरचंद्र बंद्योपाध्याय विद्यासागर। स्मरण में छवि होती है। मूर्ति उस लोक गरिमा का कलात्मक सौष्ठव है। मूर्ति का अपमान अपनी ही मनुष्य गरिमा के क्षरण का कुरूप संदेश है। भारत अपनी सभ्यता अपनी संस्कृति में संरक्षित रखता है और पूरे विश्व को लगातार आकर्षित करता है। सभ्य समाज की एक प्रवृत्ति इसी चेतना में सक्रिय रहती है, तो एक और् प्रवृत्ति है, जो कभी नालंदा विश्वविद्यालय को जलाती है, तो कभी हुसेन की कृतियों, तो कभी विद्यासागर की मूर्ति को नष्ट करती है। पांच हजार साल में जिस देश की सभ्यता की आंच बाकी दुनिया की आभा बनी है और वह यूनानी और रोमन सभ्यता से इसी अर्थ में श्रेष्ठ समझी गई है, उस समाज में रहकर आज हमें एक बार फिर पूछना पड़ रहा है कि हम सभ्य कब होंगे!

क्या बंगाल नवजागरण या पुनर्जागरण के समय इस प्रवृत्ति को अपदस्थ करने के बारे में सोचा नहीं गया था, या हम सिर्फ देश को स्वाधीन कराने में ही लगे थे? अतीत के संदर्भ तो बताते हैं कि नवजागरण देश में वृहद बंगाल में ही हुआ और वह भी कुरीतियों को अपदस्थ कर एवं सृजननिष्ठ प्रथा को प्रतिष्ठित कर। फिर वह कुसंस्कार देश के सभ्य समाज में कहां से आया, जिसे अंग्रेजी में वैन्डेलिज्म कहते हैं? कुसंस्कार को अपदस्थ कर ही ईश्वरचंद्र विद्यासागर नवजागरण की आधारशिला रख सके थे!

कुसंस्कारों को खत्म कर जिन विद्यासागर ने नवजागरण की आधारशिला रखी थी, उनकी मूर्ति को निशाना बनाकर हम क्या संदेश दे रहे हैं? मूर्ति का अपमान मनुष्य की गरिमा के क्षरण का कुरूप संदेश है।

अगले साल ईश्वरचंद्र बंद्योपाध्याय को जन्म लिए पूरे दो सौ वर्ष हो जाएंगे। 19वीं शती में मूर्ति तोड़ने की किसी घटना का कोई जिक्र नहीं मिलता यह प्रवृत्ति हमारे देश में गांधी जी के स्मारक पर लाठियां चलाने से नजर आती है और वह भी आजादी के बहुत बाद, पिछली शती के अंतिम समय में। दासता से देश को मुक्त कराने में गांधी जी का जीवन व्यतीत हुआ। ठीक उसी तरह गहरी और मजबूत मानसिक दासता से भारतीय समाज को मुक्त कराने में सफल हुए थे ब्रह्मर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर, राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर। उनके अवदान को प्रणाम करना ही उनकी छवि या मूर्ति को प्रणाम करने की शिष्टता है। क्या इन महान अतीत तथ्यों को 21वीं शती के युवा मानस को याद दिलाने की जरूरत है या उन्हें यह खुद जानना चाहिए? नवजागरण भले वृहद् बंगाल में हुआ था, पर उसका लाभ वृहद् भारतवर्ष को मिला था। नवजागरण के ये प्रथम पुरुष सिर्फ बंगाल या बांग्लाभाषियों के गौरव नहीं, पूरे देश और पूरी पृथ्वी की सभ्य चेतना के गौरव हैं। इनका अपमान अपनी असभ्यता का बेशर्म प्रदर्शन है। हिंदुत्व का उत्थान भी उसी नवजागरण का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है।

इस अराजकता में शिक्षा के अवमूल्यन की भूमिका बड़ी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने प्रहसन *अंधेर नगरी* में कहा था कि *नगरी अंधेर है, तभी राजा चौपट है।* पिछले सौ साल से देश की सभ्य भीड़ यह दोहराती आ रही कि विद्यासागर महाशय प्रातःस्मरणीय हैं, क्योंकि उन्होंने बाल विवाह एवं सती प्रथा का विरोध किया था और विधवा विवाह प्रथा की शुरुआत की थी, और वह संस्कृत के विद्वान थे। बांग्लाभाषी बांग्ला की वर्णमाला के अक्षर विद्यासागर महाशय के कारण ही जानना सीखते आ रहे हैं। बंगाल में विद्यासागर विश्वविद्यालय और विद्यासागर सेतु उन महामानव के प्रति हमारी कृतज्ञता के ही प्रमाण हैं। हिंदू लॉ बोर्ड परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण उन्हें 16 मई 1839 को 'विद्यासागर' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

नवीं शती में बाहर से आए लुटेरे जब देश को लूट रहे थे, तब दक्षिण भारत के एक शैव ऋषि माध्वाचार्य ने वैदिक भारत के सोलह महत्वपूर्ण दर्शन को एक पुस्तक रूप देकर उसे ऐसे स्थानों में भिजवा दिया, जहां लुटेरों के हाथ न पहुंच सकें। सैकड़ों वर्ष बाद विद्यासागर महाशय को उस ग्रंथ की दो प्रतियां कोलकाता में और एक प्रति काशी में प्राप्त हुईं, तो उन्होंने इसका संस्कृत में ही संपादन किया, ताकि देशवासी जान सकें कि हमारे देश में वेद, उपनिषद, शैव दर्शन आदि की मूल परंपरा रही है। विद्यासागर महाशय के इस अवदान को उनकी इस जन्म शतवार्षिकी में प्रशंसा मिलनी चाहिए, अन्यथा यह ग्रंथ छह सौ साल के मुगल प्रभाव की धुंध में ही छिपा रह जाता। आधुनिक बांग्ला साहित्य और भाषा के निर्माण में जिन विद्वानों का मुख्य योगदान है, उनमें सुनीति कुमार चटर्जी, असित कुमार बंद्योपाध्याय और सुकुमार सेन प्रमुख हैं। किंतु 14वीं शती में अपभ्रंश तक ठहर गई भारतीय भाषा और लिपि की सीमा की ओर यदि विद्यासागर महाशय ने ध्यान न दिलाया होता, तो इन विद्वानों की सक्रियता 14 वीं शती की अवरुद्ध भाषा की ओर न जाती, न बंगालियों की भाषा और इतिहास के तथ्य लिखे जाते, न तो हम दसवीं से बारहवीं शती के बीच की रचनाओं *चर्यापद* और *मंगल काव्य* के बारे जान पाते, और न सोलहवीं शती के बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के भक्ति आंदोलन के बारे में हमें पता लग पाता। क्या विद्यासगर की मूर्ति से दुर्व्यवहार के कारण क्षुब्ध भारतीय सभ्य मन एक बार फिर अपने सभ्य होने के दर्प को एक ओर रख, इस अशिष्ट प्रवृत्ति के स्थायी उन्मूलन पर विचार करना चाहेगा?

-लेखक संस्कृतिकर्मी और विद्यासागर के परिवार से संबंध रखते हैं।

नेहरू का पहला चुनाव अभियान

जब उन्हें पता चला कि उनके बाद समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण पंजाब का दौरा करने वाले हैं, तो उन्होंने श्रोताओं से कहा, मैं आपको सलाह दूंगा कि आप जाकर उन्हें सुनें। कई चीजों को लेकर शायद मैं उनसे सहमत न हूंगा। लेकिन वह एक शानदार व्यक्ति हैं।

रामचंद्र गुहा
जाने-माने इतिहासकार

जब 1951-52 में पहले आम चुनाव हुए थे, उस समय जवाहरलाल नेहरू पिछले पांच साल से भारत के प्रधानमंत्री थे। सरकार की पहचान उनसे जुड़ी हुई थी और सत्तारूढ़ पार्टी की भी यही स्थिति थी। वही उनके सबसे बड़े वोट जुटाऊ और मुख्य वक्ता थे, इस संदर्भ में वह मौजूदा प्रधानमंत्री के जैसे ही थे, जो कि दूसरी पारी के लिए मैदान में हैं। ऐसे में नेहरू के उन बयानों को याद करना समीचीन हो सकता है, जो उन्होंने अपनी पार्टी के लिए वोट मांगते हुए दिए थे।

नेहरू ने लुधियाना से अपना अभियान शुरू किया था, जहां उन्होंने सांप्रदायिकता के खिलाफ व्यापक जंग का एलान किया था। उन्होंने सभा में मौजूद लोगों को 'भयावह सांप्रदायिक तत्वों' के प्रति आगाह करते हुए कहा कि वे देश में बर्बादी और मौत ला सकते हैं। उन्होंने उनसे आग्रह किया, 'दिमाग की खिड़कियां खोलें और दुनिया के हर कोने से ताजा हवा को आने दें।'

इसके बाद दो अक्तूबर को गांधी जी के जन्मदिन के मौके पर नई दिल्ली में अपने भाषण में उन्होंने कहा, 'जब कोई राष्ट्र चाहे धर्म के नाम पर या किसी और के नाम पर अपने मन को बेड़ियों में जकड़ लेता है, तो संकीर्णता को फलने-फूलने का मौका मिलता है और राष्ट्र आगे बढ़ना बंद कर देता है।' उन्होंने कहा, यदि कोई व्यक्ति धर्म के नाम पर किसी और व्यक्ति को मारने के लिए अपना हाथ उठाता है, तो मैं सरकार के प्रमुख के रूप में और उससे इतर भी अपनी अंतिम सांस तक उससे लड़ता रहूंगा।

नेहरू ने पाकिस्तानी राज्य और वहां के लोगों को धर्म के नाम पर खुद को बेड़ियों से जकड़ते देखा था। उन्हें इस बात की गहरी चिंता थी कि प्रतिद्वंद्वी सांप्रदायिकता की भावना से प्रेरित होकर भारत और भारतीय भी उसी राह पर चल सकते हैं। और इसीलिए अपने चुनावी भाषणों में वह बार-बार सांप्रदायिक सद्भाव के मुद्दे पर लौटते रहे। अमृतसर में उन्होंने कहा, 'ऐसा तो कभी प्रश्न ही नहीं था कि कोई एक धर्म अन्य सारे धर्मों को दबाने की कोशिश करेगा। लेकिन यदि अब कोई ऐसी कोशिश करेगा, तो वह मूर्ख है और वह देश को भारी नुकसान पहुंचाएगा।' उनका मानना था कि सांप्रदायिक संघर्ष ने आर्थिक विकास की राह में रोड़े अटकाए हैं; जैसा कि उन्होंने कहा, 'भारत सिर्फ एक ही तरीके से प्रगति कर सकता है और वह यह कि सारे भारतीय चाहे वे किसी भी पेशे, प्रांत या धर्म के हों, आपसी सद्भाव के साथ रहें और मिलकर आगे बढ़ें। उनके विचार और दृष्टिकोण अलग हो सकते हैं, लेकिन वे राजनीतिक या किसी और तरह के खांचों में बंटकर नहीं रह सकते।'

एक अन्य भाषण में नेहरू ने टिप्पणी की कि, 'जो व्यक्ति सांप्रदायिक सोच वाला होता है वह छोटा व्यक्ति होता है जो कि कोई बड़ा काम नहीं कर सकता और ऐसे तुच्छ सिद्धांतों पर आधारित राष्ट्र भी छोटे हो जाते हैं।' उन्होंने कहा, 'सांप्रदायिक संगठन लगातार बीमार भावनाएं फैलाकर भारी नुकसान कर रहे हैं। ...वे न सिर्फ राष्ट्रीय उद्देश्य को नुकसान पहुंचा रहे हैं, क्योंकि हिंदू जनसंघ या हिंदू महासभा के जरिये आगे बढ़ने की उम्मीद नहीं कर सकते, बल्कि वे यह भी चाहते हैं कि भारत में दूसरे लोग पीछे रह जाएं। यह एक बचकाना विचार है, क्योंकि इससे न केवल अन्य लोग, बल्कि हिंदू भी पीछे रह जाएंगे।'

नेहरू अक्सर लैंगिक समानता के महत्व के बारे में भी बोलते थे। उनका विचार था कि 'भारत की महिलाओं का उत्थान अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि कानूनी और पारंपरिक दोनों ही रूप में इस देश में उनकी स्थिति बेहद खराब है। मैं समझता हूं कि किसी देश को उसकी महिलाओं की स्थिति से आंका जा सकता है।' इसी के साथ उन्होंने कहा, 'इस देश में पुरुषों का प्रभाव अब भी बहुत शक्तिशाली है। मेरा मानना है कि इस देश के कानूनों और परंपराओं ने महिलाओं को दबाया है और उन्हें आगे बढ़ने की इजाजत नहीं दी। यह गलत है और इसे खत्म किया जाना चाहिए और यह सिर्फ कानूनों को बदलने से ही संभव हो सकता है।'

लैंगिक समानता के पक्ष में हिंदू पर्सनल लॉ में सुधार करने की नेहरू की सरकार की कोशिशों का यह कहते हुए भारी विरोध किया गया कि हिंदू धर्म को बर्बाद किया जा रहा है। हालांकि नेहरू मानते थे कि 'ये सुधार हिंदू धर्म को बर्बाद करने के बजाय उसकी महान सेवा करेंगे, जिससे उसकी प्रगति में मदद होगी अन्यथा हिंदू समाज कमजोर हो जाएगा...।'

सांप्रदायिक सद्भाव और लैंगिक समानता के प्रति ऐसी दृढ़ता के साथ नेहरू भारतीयों से कह रहे थे कि वे कहीं अधिक न्यायसंगत और सबका ध्यान रखने वाले समाज का निर्माण करें। वह वैसा ही कुछ कहना चाहते थे, जैसा कि अब्राहम लिंकन ने एक बार नैतिक रूप से मजबूत और सकारात्मक दृष्टिकोण वाला समाज बनाने की बात कही थी।

नेहरू ने अपने एक भाषण में कहा, 'मैं अन्य पार्टियों का जिक्र करता हूं, लेकिन सिर्फ सिद्धांतों के सवालों पर। मैं उन्हें व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से नहीं देखता।' दूसरी ओर विपक्षी नेता अक्सर उन पर व्यक्तिगत हमले करते थे, इसके बावजूद नेहरू इसे सहजता से लेते थे। जैसा कि उन्होंने कहा, 'मैं अपनी जिम्मेदारियों को टालना नहीं चाहता। यह स्वाभाविक है कि सारे काम सिर्फ मैं ही नहीं करता हूं, आखिर पहिये में हजारों दांते होते हैं, लेकिन अंततः जिम्मेदारी मुझ पर ही आती है। जब आपने मुझे एक बड़ी जिम्मेदारी की जगह पर बिठाया है, तो मैं कैसे पर्दे के पीछे छिप जाऊं और इससे इनकार करूं। सरकार ने भारत में जो भी अच्छा बुरा किया है उस सबकी जिम्मेदारी लेने को मैं तैयार हूं।' नेहरू अपनी सरकार की नाकामी के लिए आसानी से दो सौ वर्षों के औपनिवेशिक शासन की विरासत पर या फिर हमारे पड़ोसियों की बदनीयती पर जिम्मेदारी डाल सकते थे; लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया।

उल्लेखनीय है कि नेहरू ने मतदाताओं से आग्रह किया कि वे सावधानी से उनके विपक्षियों को सुनें कि वे क्या कह रहे हैं। जब उन्हें पता चला कि उनके बाद समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण पंजाब का दौरा करने वाले हैं, तो उन्होंने अपने श्रोताओं से कहा, 'मैं आपको सलाह दूंगा कि आप जाकर उन्हें सुनें...मैं कई चीजों को लेकर शायद उनसे सहमत न हूंगा। लेकिन वह एक शानदार व्यक्ति हैं...आपको अन्य लोगों को भी सुनना चाहिए और सभी तर्कों को समझने का प्रयास करना चाहिए और फिर अपने से फैसला करना चाहिए।'

पाठक चाहें तो नेहरू के चुनावी भाषणों के स्वर और विषयवस्तु की तुलना हाल ही में खत्म हुए चुनाव प्रचार के दौरान विभिन्न नेताओं द्वारा दिए गए भाषणों से कर सकते हैं। जहां तक मेरी बात है, तो मैं सिर्फ यही अनुमान लगा सकता हूं कि अब से पचास या साठ साल बाद कोई भी इतिहासकार यह दर्ज नहीं करेगा कि 2019 के आम चुनाव में प्रचार के दौरान मोदी या राहुल (या फिर ममता या मायावती) ने क्या कहा था।

उनका पक्ष भी सुनें

तृतीय लिंग समुदाय की संख्या कोई विशेष चुनावी प्रभाव नहीं रखती और इसलिए इस लोकसभा चुनाव में किसी भी पार्टी ने इसके बारे में कोई विशेष चर्चा नहीं की।

वर्ष 2014 ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण वर्ष था, जब भारत में इस समुदाय की संख्या का सरकारी आंकड़ा उजागर हुआ - 4.9 लाख। हालांकि इस मुद्दे के विशेषज्ञों का मानना है कि असल में यह संख्या तीस लाख से परे है। 2014 में ही सर्वोच्च न्यायालय ने नालसा (नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी) द्वारा दायर मुकदमे में फैसला देते हुए ट्रांसजेंडर व किन्नर इत्यादि समाज को एक नई पहचान देते हुए उन्हें तीसरे लिंग की संज्ञा दी। साथ ही सर्वोच्च न्यायलय ने अपने इस फैसले में थर्ड जेंडर समुदाय के लोगों को नौकरियों एवं शिक्षा में आरक्षण तथा उनके साथ होने वाले भेदभाव पर अंकुश लगाने की जिम्मेदारी केंद्र और राज्य सरकार पर डाली। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि लिंग निर्धारण का अधिकार व्यक्तिगत चुनाव है।

सृजन पाल सिंह
लेखक एवं सीईओ, कलाम सेंटर

नालसा फैसले के कार्यान्वियन के लिए 2016 में केंद्र सरकार ने ट्रांसजेंडर (व्यक्ति अधिकारों के संरक्षण) विधेयक प्रस्तावित किया। 27 संशोधनों के बाद 2018 के अंत में लोकसभा में यह विधेयक पारित हो गया। हालांकि राज्यसभा की हरी झंडी अब भी इस बिल को मिलनी बाकी है। ट्रांसजेंडर समुदाय के लोगों और अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि 2018 के संशोधित विधेयक और 2014 के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में मूलभूत अंतर हैं। दो विषयों पर सबसे अधिक विरोध हुआ। पहला 2018 के विधेयक में किसी व्यक्ति को तृतीय लिंग का दर्जा देने की प्रक्रिया सरकार द्वारा गठित समिति के हाथ में देने की बात कही गई है। लगभग सात सदस्यों की इस समिति को जिला स्तर पर गठित करना होगा और इसमें जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर के साथ जिला समाज कल्याण अधिकारी, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता और ट्रांसजेंडर समुदाय के दो प्रतिनिधि हिस्सा लेंगे। वैसे ही सामाजिक तिरस्कार झेल रहे तृतीय लिंग समुदाय का मानना है कि ऐसी कठिन और लंबी सरकारी प्रक्रिया से अधिकतर तृतीय लिंग आवेदक कतराएंगे और यह किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति की आजादी के मौलिक अधिकार के विरुद्ध है। अब सवाल यह है कि यह अभिव्यक्ति के अधिकार से जुड़ा प्रश्न है या नहीं?

दूसरा मुद्दा जिस पर विरोध प्रकट हुआ, वह था थर्ड जेंडर को दी जानेवाली सुविधाएं। 2016 में विकलांग व्यक्तियों के अधिकार के तहत दिव्यांग व्यक्ति को शिक्षा और नौकरी में पांच फीसदी और तीन फीसदी क्षैतिज आरक्षण की व्यवस्था की गई है। तृतीय लिंग समुदाय ऐसे ही दो फीसदी आरक्षण की मांग कर रहा है, जबकि विधेयक में इसका कोई प्रावधान नहीं है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि यदि तृतीय लिंग समुदाय को बेहतर आर्थिक और शैक्षिक विकल्प दिए जाएं, तो वह मौजूदा कुरीतियों से अपने आप को मुक्त कर सकता है।

शायद यह समझना भी आवश्यक है कि तृतीय लिंग समाज की व्यवस्था कैसी होती है। प्रायः किशोर अवस्था की शुरुआत से लेकर 20 से 22 साल के बीच तृतीय लिंग के युवा, अधिकतर मामलों में समाज द्वारा अपमानित होकर अपना घर छोड़ देते हैं। इसके पश्चात वे थर्ड जेंडर की बस्तियों में जाकर 'गुरु' के 'चेले' बन जाते हैं। 'गुरु-चेले' की यह परंपरा तृतीय लिंग के समुदाय में काफी पुरानी है। सदियों से तृतीय लिंग समुदाय के एक बड़े भाग ने शादी-ब्याह और जन्म पर 'बधाई देना' और कई शहरों में भीख मांगने को ही अपनी आय का मुख्य स्रोत बना रखा है। बदलते समय में खुद उनमें इन प्रथाओं को लेकर आतंरिक द्वंद्व है। यदि हमें इस समुदाय को वाकई आधुनिक गति पर लाना है, तो इस गुरु-चेला व्यवस्था में ही जाकर हमें नई शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, कंप्यूटर शिक्षा, स्वास्थ्य और आय का स्रोत बनाना होगा।

एक तृतीय लिंग बच्चे को छोटी उम्र में ही यह ज्ञात होना शुरू हो जाता है कि वह अन्य बच्चों से अलग है। भारत के किसी भी कोने में ऐसे बच्चे या किशोर को स्कूल, मोहल्ले और अपने परिवार तक में तिरस्कार, उपहास और क्रोध तीनों को झेलना होता है। सिनेमा और धारावाहिकों में भी तीसरे लिंग के लोगो का प्रदर्शन उपहास के लिए ही होता है। ऐसे बहिष्कार से किसी भी व्यक्ति के मनोबल को ठेस पहुंचती है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समाज में तीसरे लिंग समुदाय को लेकर एक बेहतर सोच बनाएं।

आधुनिक विज्ञान ने तीसरे लिंग के व्यक्तियों को 'लिंग परिवर्तन सर्जरी'के रूप में एक नया आयाम दिया है। मगर ऐसी एक सर्जरी की कीमत कम से कम चार लाख रुपये है। इस नवीन संदर्भ में मुझसे एक थर्ड जेंडर ने कहा कि वह सामान्य रोजगार करके अपना जीवन यापन तो कर सकती हैं, परंतु लिंग परिवर्तन सर्जरी के लिए पैसे जुटाने के लिए उन्हें देह व्यापार और भीख मांगने का काम भी करना पड़ता है। ऐसा करते हुए एचआईवी, एड्स और हेपेटाइटिस जैसी विषम बीमारियां लगने का खतरा बहुत ज्यादा होता है। यही कारण है कि इस समुदाय में एचआईवी और एड्स होने की आशंका 3.1 फीसदी है, जो राष्ट्रीय दर से दस गुना ज़्यादा है।

तृतीय लिंग की संख्या कोई बहुत विशेष चुनावी प्रभाव नहीं रखती और इसलिए 2019 के लोकसभा चुनाव में किसी भी पार्टी ने इसके बारे में कोई विशेष चर्चा नहीं की। मगर किसी भी समाज की उन्नति इससे निर्धारित होती है कि वह संख्या में छोटे किंतु मुद्दों में महत्वपूर्ण समुदायों का ध्यान कैसे रखता है। तीसरे लिंग का मुद्दा एक ऐसा ही विषय है।